© 2015 IJSRSET | Volume 1 | Issue 3 | Print ISSN : 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

कालिदास का खगोलीय चिन्तन एवं पर्यावरण शोधन

डॉ. अवधेश कुमार
(प्रभारी प्रधानाध्यापक)
+2 उच्च विद्यालय, महसौरा
(लखीसराय) बिहार, भारत

सारांश - कालिदास ने पर्यावरण की शुद्धता को प्रकृति के वायुमंडलीय पवित्रता से तादात्मय स्थापित किया है। जिसमें यज्ञविधान, वनस्पति संरक्षण आदि को प्रश्रय दिया है। उन्होंने इसी तथ्य को काव्यमयी ढंग से पाठकों के समक्ष उपस्थापित किया है। सुधी अध्येता काव्यानुशीलन करते हुए पर्यावरण संरक्षण करने में समर्थ हो सकेंगे और मानव की भावी पीढ़ी को स्वस्थ रख सकेंगे।

प्रमुख शब्द - आकाशीय पिंड, ऋतुएँ, खगोलिय आयाम, आकाशगंगा आहुतियां, अंतरिक्ष काव्यमयी, ग्रह- नक्षत्र, सौर मंडल, तारामंडल, यज्ञाग्नि, अनावृत्ति।

खगोल से तात्पर्य विभिन्न आकाशीय पिण्ड जिसमें - वायुमण्डल, सौरमण्डल, नक्षत्र, तारे, ऋतुएँ तथा वायु की दशा एवं दिशा है। ये सभी आकाशीय पिण्ड पर्यावरण के प्रदूषण एवं संरक्षण हेतु काफी महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि हमारे मनीषियों ने अन्तरिक्ष आदि की शान्ति हेतु कामना की है। जैसा कि यजुर्वेद में लिखा गया है -

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरक्षि ग्वं
शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्व ग्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः सा मां शन्तिः
रेधि, ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।[1]

कालिदास ने प्रायः अपनी सभी रचनाओं में अपने खगोलीय ज्ञान या अनुभव को किसी न किसी रूप में उपस्थापित किया है। जितनी भी आकाशीय वस्तु है वे सभी प्रकृति और पर्यावरण का ही मूर्त रूप है। इसी से पर्यावरण स्वच्छ या प्रदूषित होता है। वायुमण्डल पृथ्वी को चारों ओर से घेरे गैसो का विशाल आवरण वायुमण्डल कहलाते हैं। यह हमारी पृथ्वी की महती विशिष्टता है कि इसके अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर वायुमंडल नहीं है। अतः हमें उस खगोलीय पिण्ड जिसमें, सौरमण्डल, तारामण्डल, नक्षत्र आदि विद्यमान है, सबों का संतुलित बनाये रखना होगा, उसे प्रदूषित होने से बचाना होगा, इसके लिए हमें अतीत में दृष्टि डालनी होगी।

कालिदास की कृतियों में वर्णित विभिन्न खगोलीय आयाम

महाकवि कालिदास की दृष्टि उपर्युक्त संदर्भ में बिल्कुल भावनात्मक थी। उन्होंने इन सारी प्राकृतिक वस्तुओं, आकाशीय उपादानों को देवत्व के रूप में देखा है। उन्होंने अपनी प्रौढ़ कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथम श्लोक (नान्दीपाठ) में अपने इष्टदेव भगवान् भूतभावन शंकर की प्रार्थना अष्टमूर्ति के रूप में की है। ये अष्टमूर्ति जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र आकाश, पृथ्वी, वायु रूप में हैं। कवि इन सबों को प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं, जो कि सबों का कल्याणकारी है

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधतः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।

-अभिज्ञान. 1.1

उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त विधिहुतं (विधिना हुतम्) हविः" से अभिप्राय विधि पूर्वक हवन की गई धृत-जौ तिल- आदि हवन की शुद्ध सामग्री से है। जिसके माध्यम से समस्त वायुमण्डल में प्राणवायु (ऑक्सीजन) की शुद्धता बढ़ती है, क्योंकि यज्ञाग्नि में शुद्ध धृत एवं सुगन्धित वायु-शोधक, रोगविनाशक पदार्थों की आहुति पड़ती है (दी जाती है) । अतः यहाँ कालिदास की अन्तरिक्ष में अग्निहोत्र द्वारा वायुशुद्धि विषयक भावना स्पष्ट होती है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम के तृतीय अंक में भी यज्ञ-कर्म का वर्णन निम्न रूप में किया गया है

सायंतने सवनकर्मणि सम्प्रवृते
वेदी हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः।। -अभिज्ञान. – 3.25

कवि ने इस नाटक में खगोलीय वस्तुओं सूर्य चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र जैसे महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय उपादानो का चित्रण बड़ी सहजता से किया है। चन्द्र-किरण की शीतलता एवं सूर्य-प्रकाश की उष्णता उनकी कृतियों में देखने को मिलती है। उक्त नाटक के चतुर्थ अंक में कवि द्वारा एक ओर चन्द्रमा का अस्ताचल की ओर जाने का तथा दूसरी ओर अरूण को आगे करके सूर्य का उदय होने का वर्णन किये जाना, उनके खगोलीय पर्यावरण से सम्बंधित परिलक्षित होता है

"यात्येकतोऽस्त शिखरं पति रोषधीना माविष्कृतोऽरूण पुरः सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद व्यसनो दयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।। - अभिज्ञान. -4.1

चतुर्थ अंक के निम्न श्लोक में भी यज्ञ अग्नि में होम आदि वस्तुओं से वायु-परिशोधन एवं परिवेश परिशुद्धि की बात कही गयी है

अमीं वेदिं परितः क्लृप्तधिष्णयाः समिद्वन्तः प्रान्त संस्तीर्णदर्माः।
अपघनन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु।। - अभिज्ञान. 4.8

शकुन्तला का पतिगृह-गमन मार्ग सुखद हो जिस मार्ग का सूर्य किरण जन्य आतप मार्गस्थ छाया दार वृक्षों द्वारा दूर कर दिया गया हो और जिस मार्ग की धूलि कमल पराग सदृश कोमल हो गई हो, और जिस मार्ग में मन्द-मन्द तथा अनुकूल-पवन वहता हो अर्थात् शकुन्तला की पतिगृह यात्रा कल्याणमय हो ऐसी कवि ने कामना की है

रम्यान्तर कमलिनीहरितैःसरोभिश्छाया द्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूल पवनश्च शिवश्चपन्थाः।।(अभिज्ञान. -4-11)

इसी अंक में कण्व ने शकुन्तला को सूर्य के समान पुत्र प्राप्त करने की बात कही है

"तनयमचिरात प्राचीवार्क प्रसूय च पावनम्' (4-19)

पञ्चम अंक में सूर्य की व्यस्तता बताते हुए कवि ने उसका लोकोपकार सिद्ध किया है

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवः प्रयाति" (5-14)

सप्तम अंक में मातलि से राजा का यह कथन ''बताओं वायु के किस मार्ग में हम चल रहे हैं ? (कथमस्मिन् मरूतां पथिवर्तामहे) में "मसतां पथि' से तात्पर्य हिन्दू विचारधारा के अनुसार आकाश के सात भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक में एक वायु मानी गयी है। ये सात वायु निम्नलिखित हैं (1) आवह (2) प्रवह (3) उद्वह (4) सम्वह (5) सुबह (6) परिवह (7) परावह।

पृथ्वी से बादलों तक आवह, प्रवह वायु में सूर्य, सम्वह में चन्द्रमा, उद्वह में नक्षत्र, विवह में ग्रह, परिवह में सप्तर्षि तारे तथा परावह में ध्रुव। मातलि ने राजा प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा जो आकाश में प्रतिष्ठित आकाश गंगा को धारण करता है, जो अपनी वायु रूपी किरणों को चारों ओर फैलाकर नक्षत्रों को यथास्थान चलाता है, उस परिवह नामक वायु का मार्ग है -

त्रिस्रोतसं वहति यो गगन प्रतिष्ठा ज्योतींषि व र्तयति च प्रविभक्तरश्मिः।

तस्य द्वितीय हरिविक्रमनिस्तमस्कं वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् (7-6)

यहाँ 'त्रिस्रोतमं' से तात्पर्य गंगा की तीन धाराएँ मानी गयी हैं। आकाशस्थ गंगा को आकाश गंगा (मन्दाकिनी) कहते हैं। पृथ्वीस्थ को भागीरथी और पातालस्थ को भोगवती गंगा कहते हैं। परिवह नामक वायु में सप्तर्षि नक्षत्र और आकाश गंगा है। महाकवि कालिदास की उपर्युक्त विचारधारा में वायु की दशा एवं दिशा सम्बंधी ज्ञान स्पष्ट झलकता है।

शापावसान होने पर मारीच के आश्रम में दुष्यन्त का शकुन्तला से पुनर्मिलन होता है। उसी समय राजा शकुन्तला से कहते हैं कि मेरी स्मृति पर पड़ा हुआ मोह का परदा हट गया है और तुम आज मुझे वैसी ही मिल गई, जैसे चन्द्रग्रहण बीत जाने पर रोहिणी चन्द्रमा से जा मिलती है। "उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम्'। अन्त में कवि ने मारीच के माध्यम से कहा है कि हे राजन! तुम्हारी प्रजा के लिए इन्द्र भरपुर वर्षा करें, तुम यज्ञ करके इन्द्र को सदा प्रसन्न रखो।

कवि ने मेघदूत में 'मेघ' जो कि आकाशीय उपादान है, को 'दूत' बनाया है। 'मेघ' अर्थात् 'बादल' घूम-ज्योति-जल-वायु आदि का संघात है -

धूमज्योति सलिलमरूतां सन्निपातः क्व मेघः' (पूर्वमेघ-5)

यह मेघ आकाश मार्ग से गमन करता है। कवि ने यक्ष का संदेश भेजते समय मेघ की यात्रा मंगलमय हो इसके लिए वायु को शान्त और अनुकूल बताया है

'मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां'' (पूर्व.-10)।

उन्होंने यक्ष के माध्यम से मेघ मार्ग के वर्णन के क्रम में इन्द्रधनुषी छटा का वर्णन किया है ! इन्द्रधनुष वर्षा के समय सूर्य की रोशनी से प्रत्यावर्तित होकर सात रंगों के दिखाई पड़ते हैं।

वर्षा के कारण ही फसल अच्छी होती है। वनस्पतियाँ फल-फूल से लद जाते हैं। इसलिए इस मेघ को माल प्रदेश की स्त्रियाँ बड़ी सावधानी से (प्रेम भाव से) देखती है

"त्वय्यायत्तं कृषि फलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः'' (पूर्व.-16)।

मूसलाधार वर्षा से वन की आग (दावानल) शान्त हो जाती है-

कालिदास ने उज्जयिनी वर्णन के प्रसंग में शिप्रानदी की वायु का वर्णन किया है। खिले हुए कमल पुष्पों की सुगंध से सुगन्धित एवं शरीर को स्वस्थ रखने वाला पवन रति जन्य खिन्नता को दूर करता है। शिप्रा वातं प्रियतम् इव प्रार्थना चाटुकारः" (पूर्व.-32)। कवि यक्ष के माध्यम से कहते हैं कि आँधी चलने पर देवदार आदि वृक्षों के आपस में रगड लगने से जंगल में आग लग जाती है। जिससे चमरी गाय के रोये जल जाती हैं। इस दावानल को तुम (मेघ) अपने शीतल जल से शमन करना।

तं चेद्वायौं सरतिसरलस्कन्ध संघट्टजन्म।

बाधेतोल्काक्षपित चमरी बालभारो दवाग्निः।। - पूर्वमेघ 57

उत्तरमेघ में कवि ने स्फटिक मणियों का रूपक ताराओं से दिया है। अलकापुरी के यक्ष अपनी अलवेली स्त्रियों को लेकर स्फटिक मणि के बने अपने उन भवनों पर बैठते हैं, जिनकी छत पर पड़ी हुई तारों की छाया ऐसी जान पड़ती है, मानो फूल जड़े हुए हों

ज्योतिश्छाया कुसुमरचितान्युत्तमस्त्री सहायाः। - उत्तरमेघ 5

यक्ष मेघ से बताता है कि अलकापुरी में मेरा घर इन्द्रधनुष के समान सुन्दर है 'सुरपति धनुष चारूणा तोरणेन"।(उत्तर.-15) कवि सूर्य को कमल की शोभा का कारण मानता है, क्योंकि बिना सूर्य उदय हुए कमल नहीं खिलता

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्। - उत्तरमेघ 5

कालिदास ने यक्ष के माध्यम से दिन के प्रातः एवं मध्याह्न रूप, दीर्घयामा' तथा रात्रि के 'त्रियामा' (तीन पहर) आदि का भी वर्णन वियोग के दिन कम होने के प्रसंग में किया है - **"संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा"**। फिर यक्ष कहता है कि शापान्त के बाद हम दोनों (यक्ष-यक्षिणी) वियोग काल में सोची हुई विभिन्न अभिलाषाओं को शरद ऋतु की परिपक्व या पूर्ण चान्दनी वाली रातों में उपभोग करेंगे।

"निर्वेक्ष्याव: परिणत शरच्चन्द्रिकासु क्षपासु"।[3]

रघुवंश महाकाव्य में इन खगोलीय पिण्डों का विशद विवरण मिलता है। सर्वप्रथम उन्होंने चन्द्रमा का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि जैसे क्षीर सागर में चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था, वैसे ही मनु के वंश में सबको सुख प्रदान करने वाला राजा दिलीप ने चन्द्रमा के सदृश जन्म लिया -

"दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव' [4]

जैसे सूर्य अपनी किरणों से धरती का जितना जल सोखता है, उसका हजार गुना जल बरसा देता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा से जितना कर लेते थे, वह सब प्रजा की भलाई में खर्च कर दिया करते थे -

"सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रवि:'' [5]

प्रजा से लिये हुए 'कर' (Tax) राजा दिलीप इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ में लगा देते थे, क्योंकि यज्ञ करने से देवता (इन्द्र) खुश होकर आकाश को दुहते थे और जल बरसाते थे, जिससे खेत अन्न से भर जाता था।

'दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मधवा दिवम्' (रघु-1-26)

इसी अंक में पवन की अनुकूल दशा एवं दिशा राजा के अभिलषित फल प्राप्ति का संकेत दे रही है। चैत की पूर्णिमा को जैसे चित्रा नक्षत्र के साथ सुशोभित चन्द्रमा आँखों को अत्यन्त भला लगता है, वैसे ही मार्ग में जाते हुए शुभ्रवस्त्रधारी राजा दिलीप भी रानी सुदक्षिणा के साथ सुन्दर दिख रहे थे। चन्द्रमा के पुत्र बुध के सदृश सुरूप राजा दिलीप सुदक्षिण के साथ बड़े सुन्दर लग रहे थे -

काऽप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।।
तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।। (रघु.-1-46,47)

महर्षि वशिष्ट के आश्रम में हवन सामग्री की गंध से सुगन्धित अग्निहोत्र का धुआँ से युक्त पवन के चारो ओर फैल जाने से आश्रम की ओर आते हुए अतिथियों को भी पवित्र कर रहा था -

पुनानं पवनोद् धुतैधूर्मराहतिगधिभिः।। [6]

राजा दिलीप महर्षि वशिष्ट से कहते हैं कि हे यज्ञकर्ता। शास्त्रीय विधि से आप जब अग्नि में घी हवन करते हैं तो आपकी आहुतियाँ अनावृष्टि से सूखते हुए धान के खेतों पर जल बरसाने लगती हैं -

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।

वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।। [7]

कवि ने यहाँ अग्निहोत्र के माध्यम से पर्यावरण शोधन तथा संरक्षण करने की ओर संकेत करना चाहा है।

चौथे सर्ग में कवि ने उजले हंसो की उड़ती पाँतों की तुलना रात में टिमटिमाते तारे से की है- **"हंस श्रेणीषु तारासु"।**[8] जैसे सूर्य अपनी तीखी किरणों से पृथ्वी का जल खींचने के लिए उतर की ओर (उत्तरायन) घूम जाता हैं वैसे ही रघु भी उत्तर के राजाओं को जीतने के लिए उधर ही चल पड़े। जैसे बादल (मेघ) समुद्र से जल लेकर फिर पृथ्वी पर बरसा देते हैं, वैसे ही महात्मा लोग भी धन को दान करने के लिए ही जुटाते है-

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव"। (-4-86)

पञ्चम सर्ग में कवि ने सूर्य के द्वारा उसके प्रकाश से समस्त संसार को चैतन्य प्रदान करने की बात कही है। **"लोकेन चैतन्य मिवोष्णरश्मेः।** [9] षष्ठ सर्ग के इन्दुमती स्वयंवर प्रसंग में सुनन्दा की यह उक्ति कि- जैसे अगणित तारों, ग्रहों और नक्षत्रों से भरी रात तभी चाँदनी रात कहलाती है, जब कि चन्द्रमा खिला हुआ हा, वैसे ही यद्यपि संसार में सहस्रों राजा है तथापि इन्हीं (मगधनरेश परंतप) के रहने से पृथ्वी राजा युक्त कहलाती है.

नक्षत्रताराग्रह सङ्खलाऽपि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः" [10] कुण्डिनपुर के राजा भोज ने अज के साथ मार्ग में तीन राते बितायी और उसके बाद से ही लौटे, जैसे अमावस्या को सूर्य के पास से चन्द्रमा लौट पड़ता है। वेदों के अध्ययन करके ऋषि ऋण से यज्ञ करके देवऋण से और पुत्र उत्पन्न करने पितृऋण से मुक्त होकर राजा वैसे ही शोभित हुए जैसे ग्रहण से छूटकर सूर्य शोभित होता है। दशम सर्ग में कवि कहते हैं कि जैसे वायु और अग्नि का तथा चन्द्रमा और समुद्र का जोड़ा कभी नहीं बिछुड़ता, वैसे ही राम और लक्ष्मण का तथा भरत और शत्रुध्न का साथ कभी नहीं छूटता था। एकादश सर्ग में कालिदास ने लिखा है कि जनकपुरी में दोनों बालक (राम-लक्ष्मण) ऐसे सुन्दर लग रहे थे, जैसे दो पुनर्वसु नक्षत्र पृथ्वी पर उतर आये हों -

तौ विदेहनगरी निवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसु। - रघुवंशम् 1.36

तेरहवें सर्ग में राम सीता से कहते हैं कि समुद्र में मेरे द्वारा निर्मित पुल ने मलय पर्वत तक दो भागों में इस प्रकार बाँट दिया है, जैसे सुन्दर तारों से भरे हुए शरद् ऋतु के खुले आकाश को आकाशगंगा दो भागों में विक्त कर देती है।

"छाया पथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृत चारूतारम्" - रघुवंशम् 13.2

कुमारसम्भवम्' के उमा उत्पत्ति प्रसंग में कवि ने लिखा है कि जैसे चाँदनी के साथ-साथ चन्द्रमा की अन्यान्य कलाएँ भी बढ़ने लगती है, वैसे ही ज्यों-ज्यों पार्वती जी बढ़ने लगी त्यों-त्यों उनके सुन्दर और सुडौल अंग भी बढ़ने लगे।

"दिनेदिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्र मसीव लेखा"।। - कुमारसम्भवम् 2.19

द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा ने देवताओं से पूछा कि बतलाइये आप लोगों के मुँह की कान्ति पहले जैसे क्यों नहीं है ? कुहरे से ढंके हुए धुंधले तारे के समान आप लोग उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं ?

हिमक्लिष्ट प्रकाशानि ज्योतीषीव मुखानि वः"।

ब्रह्मा जी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए देवताओं ने कहा- भगवन् ! आप से ही वरदान पाकर तारक नाम का ठीठ राक्षस उस प्रकार सिर उठाता चला जा रहा है, जैसे संसार का नाश करने के लिए धूमकेतु (पुच्छल) तारा निकल आया हो **(उपप्लवाय लोकानां**

धूमकेतुखित्थितः[11]) प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य भी डरकर उनके नगर पर केवल उतनी ही किरणे फैलाते हैं, जिनसे तालाब कमल खिल जाय (2-33)। पवन भी उसके पास पंखे की वायु से अधिक वेग में नहीं वहता आदि।

तृतीय सर्ग में कवि ने वसन्त ऋतु में पवनों की दिशा बताते हुए लिखा है कि वसन्त के छा जाने पर असमय में ही सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो गये उस समय दक्षिण से बहने वाला मलय पवन ऐसा लगता था, मानो अपने पति सूर्य के चले जाने पर दक्षिण दिशा खिन्न होकर अपने मुँह से लम्बी-लम्बी साँसे छोड़ रही। है।

"दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीक निश्वास मिवोत्सर्ज'(कुमार-3-25)

पञ्चम सर्ग में ब्रह्मचारी (शिव) के द्वारा वल्कल पहनी हुई गौरी की आलोचना इस बढ़ती हुई रात की सजाबट खिले हुए चन्द्रमा और तारों से होती प्रकार की गयी है या कि सबेरे के सूर्य की लालिमा से ?

वदप्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरूणाय कल्पते। (5-44)

सप्तम सर्ग में शिव-पार्वती परिणय के पूर्व सूर्योदय के तीन मुहूर्त बाद उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में कुटुम्ब की सुहागिन और पुत्रवती स्त्रियाँ पार्वती जी का शृंगार करने लगीं।

"मैत्रं मुहूर्ते शशलाञ्छनेन योगंगातासूत्तरफल्गुनीषु"- कुमारसम्भवम् 7.6

जब शंकर जी ने पार्वती से कहा कि सदा स्थायी ध्रुव (तारा) की ओर देखते तो पार्वती जी शर्माती हुई बोली "हाँ देख लिया।

ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन। - कुमारसम्भवम् 7-85

दशम सर्ग में देव राज इन्द्र की अग्नि के प्रति यह उक्ति नितांत गवेषणीय है सूर्य के लिए जो आहुति दी जाती है, उसे तुम धरोहर की भाँति लेकर उन्हें दे देते हो। सूर्य उसे बादल बनकर बरसाते हैं, जिससे अन्न पैदा होता है और फिर उसी अन्न से संसार की प्राणियों का भरण-पोषण होता है। अतः तुम्ही समस्त जगत के पिता हो

निधत्से हुतमर्काय स पर्जनयोऽभिवर्षति। [12]

कुमार कार्तिकेय की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि आकश मैं चलते हुए देवताओं के बीच में अपनी अनुपम दीप्ति से सुन्दर दीखने वाले कुमार कार्तिकेय ऐसे लगते थे, मानो नक्षत्रों और तारों के बीच में चन्द्रमा चल रहे हो-

नक्षत्रताराग्रहमण्डलानामिव त्रियामारमणो नभोऽन्ते। [13]

देवता और राक्षसों के बीच युद्ध में क्रोधित वीरों ने जो आग उगलते हुए भयंकर सापों के समान विषैले बाण छोड़े जिससे सारा आकाश भर गया अर्थात् प्रदूषित हो गया।

विसृष्टाःसुभटैः सष्टैाम व्यानशिरे शशः। [14]

कवि ने युद्ध से अन्तरिक्ष प्रदूषित होती है, ऐसी भावना व्यक्त की है। इसकी पुष्टि उन्होंने इसी सर्ग (सोलहवें) में 11-12 श्लोक से की है।

'विक्रमोर्वशीयम' के प्रथम अंक में राजा पुरूरवा 'उर्वशी' को देखकर कहता है कि इसे या तो कान्ति को देने वाले चन्द्रमा बनाया होगा या तो फिर वसन्त ऋतु ने इसकी रचना की होगी।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः। -विकमो 1.10

राजा उर्वशी से कहता है कि हे कृशोदरी ! हेमकूट पर्वतपर स्थित ये आपकी सखियाँ उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से आपको उस प्रकार देख रही है, जेसे लोग ग्रहण से छूते हुए चन्द्रमा को देखते हैं -

"लोकाश्चन्द्रमिवोपप्लवान्मुक्तम्"। -विकमो.-1.12

रम्भा अपनी सखी (मेनका) से कहती है कि हे सखी ! चित्रलेखा के साथ प्रिय सखी उर्वशी को लेकर राजर्षि उस प्रकार इधर ही आ रहे हैं, जैसे मानो विशाखा के दो तारो के साथ साक्षात् चन्द्रमा आ रहे हों -

प्रियसखीमुर्वशी गृहीत्वा विशाखासहित इव भगवान् सोमः समुपस्थितो राजर्षिः'

-विक्रमो.-1-12 के बाद गद्य [4]

तृतीय अंक में कुभ्युकी राजा से कहता है कि महाराज की जय हो ! महाराज ! महारानी निवेदन कर रही है कि मणिहर्म्य की छत पर से चन्द्रमा के सुखद दर्शन होंगे। अतः मैं चाहती हूँ कि मैं वही पर महाराज के साथ बैठकर चन्द्रमा तथा रोहिणी का संयोग दे।

मणिहर्म्यपृष्ठे सुदर्शनश्चन्द्रः।

...यावद्रोहिणीसंयोग इति"|| [16]

चतुर्थ अंक में चित्रलेखा कहती है कि हे सखी। यहाँ भगवान् सूर्य की सेवा करने के लिए सभी अप्सराओं की पारी बँधी हुई है। फिर सहजन्या कहती है कि चलो उदय होते हुए सूर्य की पूजा कर लें -

"उदयोन्मुखस्य भगवतः सूर्यस्योपस्थानं कुर्वः।'

पञ्चम अंक में राजा कहते है कि उस पक्षी द्वारा वह मणि दूर ले जाये जाने पर भी ऐसा लगा रहा है, मानो रूखे बादल के टुकड़े के साथ रात को मंगलतारा चमक रहा हो।

नक्तमिव लोहिताङ्गः परूषधनच्छेद संयुक्तः। - विक्रमो. 5.4

'मालविकाग्निमित्रम्' के प्रथम अंक में परिव्राजिका महारानी धारिणी से कहती है कि जिस प्रकार सूर्य की कृपा से अग्नि में बहुत चमक आ जाती है, वैसे ही रात की कृपा पाकर चन्द्रमा में भी बहुत चमक आ जाती है-

अतिमात्रभसुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि लिशापरिगृहीतः।।

- मालविका 1.13

चतुर्थ अंक में विदूषक ने कहा कि ज्योतिषियों ने महाराज से कहा है कि आपके ग्रह अनिष्टकारी है, अतएव इसी समय सभी बन्दियों को मुक्त करा दीजिये। 'सोपसर्ग वो नक्षत्रम् ।

इसी अंक में राजा कहता है कि असमय क्रोध करना शोभा नहीं देता। बिना करण के तुमने कदापि क्रोध प्रदर्शित नहीं किया। पूर्णिमा के बिना ही राहु ग्रहण से चन्द्रमण्डल कलुषित हो जाय, ऐसी बात किस रात्रि में भला होती है ?

अपर्वणि ग्रह कलुषेन्दुमण्डला विभावरी कथय कथं भविष्यति। - मालविका 4-16

राजा कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र अहोरात्र का विभाजन करके शासन करते हैं। उसी प्रकार वे दोनों (यज्ञसेन तथा माधवसेन) वरदा नदी के दक्षिण तथा उत्तर तट अलग-अलग शासन करें।

नक्तन्दिवं विभज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव"(5-13)

ऐसे तो ऋतुसंहार में षड्ऋतुओं का वर्णन हुआ है जो सजीव और साक्षात् है, किन्तु इसमें सूर्य-चन्द्र तारे आदि का भी प्रसंगानुकूल वर्णन आया है। शरद् ऋतु स्वच्छ मरकतमणि के समान शोभा वाले जल से असंकृत विपुल जलाशयों की छटा को मेघहीन तथा चन्द्र एवं तारा-गणों से परिपूर्ण आकाश धारण कर रहा है "श्रियमतिशयरूपां व्योम तोयाशयानां वहति विगतमेघं चन्द्र तारावकीर्णम्' (ऋतुसंहार-3-21) शरद-ऋतु में फूलों के संस्पर्श से पवन शीतल होकर बहता है। मेघों के न रहने से दिशाएँ स्वच्छ हो गयी हैं। जल विमल तथा कीचड़। (गंदगी-प्रदूषित) रहित पृथ्वी, निर्मल रश्मियों वाला चन्द्र एवं ताराओं से चित्रित आकश रंग-विरंगा लग रहा है-

विमलकिरण चन्द्रं व्योमताराविचित्रम्" (3-22)

शिशिर ऋतु में बरफ समूह से तथा पुनः चन्द्ररश्मियों से शीतल की हुई राते, जो सफेद तारागणों से अलंकृत है, वे सभी को आह्लादित करती हैं **-विपाण्डु तारागणचारूभूषणा जनस्य सेव्या न भवन्ति रात्रय:।**[17]

वसन्त वर्णन में कवि कहते हैं कि सुन्दर सायंकाल का समय चारों ओर छिटकी हुई चाँदनी, सुगन्धित पवन-ये सभी सिद्ध औषध द्रव्य (Medicine) हैं **रम्य: प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभास:... पवनः सुगन्धिः...सर्वं रासायनमिदं-**[18]

इस काव्य में कवि ने अपने और प्रकृति के बीच एकता स्थापित कर ली। डॉ. कीथ ऋतुओं के वर्णन के प्रभावित होकर लिखते हैं कि 'ये ऋतुए नि:संदेह भारत की है। दृश्य उस खुले जीवन के हैं जिसमें उस काल के विद्वान् मनीषि बिताते थे"। कवि के वर्णन से भारत की जलवायु और वर्षा आदि पर भी प्रकाश पड़ता है। षड्ऋतुओं का नाम इस प्रकार है[19] -

1. निदाध-काल-ज्येष्ठ और आषाढ (Jun yp July)
2. वर्षा काल- श्रावण और भाद्र पद (August to Sept.)
3. शरद् काल- आश्विन और कार्तिक (October to November)
4. हेमन्त काल मार्गथीर्ष और पौष (December to January)
5. शिशिर- माघ और फाल्गुन (February to March)
6. वसन्त- चैत्र और बैशाख (April to May)

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में विभिन्न आकाशीय खगोलीय पिण्डों का बिल्कुल काव्यमयी वर्णन किया है। यद्यपि यहाँ इन वस्तु का शृंगारिक वर्णन ही अधिक मिलता है, किन्तु इन सबों के प्रति उनके हृदय देवत्व की भावना विद्यमान थी। अपनी श्रद्धा एवं भक्ति के माध्यम से कवि ने इन प्रकृतिक वस्तुऔं की स्वच्छता और पवित्रता के लिये लोगों में एक नया जागरण लाने की कोशिश की है, जिससे हम सबों का भविष्य उज्ज्वल हो सके।

पूरे ब्रह्माण्ड में अनगिनत ग्रह एवं प्रकाश पुञ्ज है, किन्तु केवल इसी ग्रह (सौरमण्डल) पर वायुमण्डल आदि होने के कारण, पर्यावरण जीवन के अनुकूल है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने सौरमण्डल, वयुमण्डल की विशिष्टता को बरकरार रखें। यह तभी सम्भव है जब हम पृथ्वी के प्राकृतिक वस्तुओं की स्वच्छता और पवित्रता के लिए लोगों में एक नया जागरण लाएँ धरातल जीव-निर्जीव, जड़-चेतन सभी घटकों के साथ सामञ्जस्य बनाये रखे तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को पूरे विश्व-समाज का आधार मानकर उसे क्षरण एवं प्रदूषण से मुक्त करने के लिए दृढ़ संकल्पित होकर सम्मिलित एवं सामूहिक निष्ठा के साथ तत्परता बरतें। इसके बाद ही सौरमण्डल एवं वायुमण्डल को भी प्रदूषित होने से बचाकर हम विश्व मानवता की रक्षा कर सकते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आज जिन नीतियों एवं रीतियाँ से विश्व के पर्यावरण को स्वच्छ एवं प्रदूषणरहित करने की बात संसार के पर्यावरणबिद कर रहे हैं, उनकी ओर हजारों वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियों एवं मनीषियों ने संकेत किया था। आधुनिक विज्ञान पृथ्वी के अतिरिक्त जल एवं वायु को भी प्रदूषित होने से बचाने के लिए प्रयास रत है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय चिन्तकों ने न केवल पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले और बढ़ने वाले पेड़-पौधों एवं लताओं के सहारे पर्यावरण को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाने के लिए समुचित मार्ग निर्देश किया, अपितु पर्यावरण की परिशुद्धि में अधिक योगदान करने वाले वृक्षों-पीपल, नीम, आँवला तथा तुलसी आदि में धार्मिक भावना को निरूपित कर उनके अधिकाधिक संरक्षण एवं सम्बर्द्धन के लिए लोगों को प्रेरित किया। इन वनस्पतियों से हमारा सौरमण्डल एवं वायुमण्डल भी प्रभावित होता है।

महाकवि कालिदास ने समस्त प्राकृतिक पदार्थों को आम जीवन के क्रिया-कलापों से तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इस आलोक में उनका श्रेष्ठ काव्य और विश्व साहित्य में गीति काव्य के रूप में विख्यात मेघदूतम् पूरा का पूरा प्रकृति काव्य है। इस छोटी सी रचना में कवि ने अपने उस हार्दिक भावना को उडेल दिया है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से यह अमर काव्य गागर में सागर जैसा है। विश्व के श्रेष्ठ

नाटकों में अभिमान्य अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आरम्भ प्रकृति के महत्वपूर्ण अष्ट-उपादानों के वर्णन से होता है। इनमें प्रकृति के मुख्य पञ्चतत्त्व पृथ्वी जल, वायु, अग्नि और आकाश के अतिरिक्त सूर्य और चन्द्रमा के साथ 'होता' का भी उल्लेख करके उन्होंने यज्ञ सम्पादन के महत्त्व को उजागर किया है, क्योंकि यज्ञ सम्पादन में होता की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ये यज्ञ वायुमण्डल को पवित्र एवं परिशुद्ध करते हैं। वेदों की सार्थकता यज्ञ सम्पदान में ही बतायी गयी है - **अग्निहोत्रफला वेदाः।**

इन आठों उपादानों को वे ईश्वर की मूर्ति मानकर उनके प्रति श्रद्धा-निवेदित करते हैं तथा पाठकों और दर्शकों को इनके संरक्षण के प्रति जागरूक करते हैं।

प्रकृतिगत जीवनदायी तत्त्वों वृक्ष लता आदि के प्रति मानव को अधिक सजग एवं संवेदना युक्त होने की आवश्यकता होती है। क्योंकि इस समय सूर्य की प्रचण्ड किरणें इन्हें जलाकर नष्ट करने में बहुत प्रभावी होते हैं। इसलिए ग्रीष्म-ऋतु में सर्वत्र हरियाली बनी रहे, इसलिए इसके लिए पाठकों को सचेष्ट बनाने के लिए अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अंत में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हैं। यही नहीं भारतीय षड्ऋतुओं के वर्णन हेतु रचित आरम्भिक रचना ऋतुसंहार का आरम्भ भी ग्रीष्म ऋतु के वर्णन से ही होता है। कहने को तो समालोचक गण कालिदास को दरबारी कवि कहते हैं, किन्तु गम्भीरता पूर्वक देखने पर हम पाते हैं कि उनकी श्रेष्ठ रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् में विद्यमान सात अंकों में केवल पंचम अंक की घटना राजदरबार में घटित होती है, शेष सभी अंको की घटना प्रकृति के प्राङ्गन में ही होती है।

अतः स्पष्ट है कि उन स्थावर-जङ्गम रूप प्राकृतिक उपादानों, खगोलीय वस्तुओं से उन्होंने भावनात्मक स्नेह स्थापित कर सहृदय-पाठकों एवं प्रेक्षकों को उसका सम्बर्द्धन एवं सम्पोषण करने का संदेश दिया है, जिससे मानव मात्र में स्वस्थ चेतना का विकास सम्भव हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. यजुर्वेद - 37-17
2. मेघदूतम् (उत्तरमेघ 51)
3. मेघदूतम् (उत्तरमेघ 50)
4. रघुवंशम् 1.12
5. रघुवंशम् 1.18
6. रघुवंशम् 1.26
7. रघुवंशम् 1.62
8. रघुवंशम् 4.19
9. रघुवंशम् 5.14
10. रघुवंशम् 6.22
11. कुमारसम्भवम् 2.32
12. कुमारसम्भवम् 10.20
13. कुमारसम्भवम् 13.8
14. कुमारसम्भवम् 16.8
15. कालिदास ग्रंथावली- डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी- पृ. 480

16. कालिदास ग्रंथावली- डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी- पृ. 511
17. कालिदास ग्रंथावली- डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी- पृ. 336
18. कालिदास ग्रंथावली- डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी- पृ. 341, 342
19. कालिदास का भारत- भगवत शरण उपाध्याय पृष्ट-57